कर्मों की दस अवस्थाएं

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

इस संसार में सभी मानव सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। सुख और दुःख मानव को प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होते हैं। मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। यदि वह अच्छा कर्म करता है, तो उसे सुख की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कर्म करता है, तो उसे दुःख की प्राप्ति होती है। कर्म अपना फल अवश्य देते हैं। बिना भोगे कर्म का फल नष्ट नहीं होता। अतः मनुष्य को सदैव अच्छा कर्म ही करना चाहिए। जिससे उसका लोक और परलोक सुधरे और सुख की प्राप्ति हो। धर्म क्रिया जैसे सामायिक, संवर, दया व्रत, उपवास, पौषध, त्याग–प्रत्याख्यान आदि का जैन धर्म आराधना में प्रमुख स्थान है। भगवान वीतराग देव ने इन क्रियाओं की प्ररूपणा आत्म कल्याण के हेतु प्ररूपित की। जीवन को निर्विकार दशा में लाने तथा अनन्त कालिक बुरे कर्मो का निवारण करने में ये क्रियायें जीवन पुरूषार्थ को सार्थक बना देती हैं।

मैले कपड़े को साफ करने के लिए कुछ तो करना ही होगा। केवल यह विचार लेकर बैठ जाएं कि कपड़ा साफ हो जाए तो इतने मात्र से कपड़ा साफ नहीं होगा। तप मानव के आन्तरिक और बाहरी शुद्धता का साधन है। तपरूपी अग्नि से मानव जीवन के कर्म भष्म हो जाते हैं। मानव जीवन कर्मों का खेल है। जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। किसान खेत में जैसा बीज बोता है उसे वैसा परिणाम प्राप्त होता है। जीव जन्म–जन्मान्तरों में जैसा कर्म किया है, वर्तमान जीवन में प्रारब्ध बनकर या भाग्योदय होकर उसे परिणाम भुगतना पड़ता है।

जीव और कर्म का संबंध अनादि है। कर्म पौद्‌गलिक है। कर्म पुद्‌गल आत्मा से चिपककर आत्मा के स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं। ऐसे कर्मों को घाति कर्म कहते हैं। इन कर्मों का मूलोच्छेदन होने से ही आत्मा सर्वज्ञ या सर्वदर्शी बन सकता है। जो कर्म आत्मा के स्वाभाविक गुणों का घात नहीं कर पाते वे अघाती कर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र

अघाति कर्म हैं। आत्मा में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अंनत सुख, अनंत वीर्य, अटल अवगाहन, अमूर्त्तिकपन, अगुरुलघुत्व और लब्धि है। कर्म पुद्गल आत्मा के इन स्वाभाविक गुणों को प्रगट नहीं होने देते। जीव के साथ कर्म का अनादि संबंध है। यद्यपि जीव और कर्म दोनों पृथक तत्व है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के कारण कर्म आत्मा से बंधता है। राग और द्वेष कर्म के बीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है और यह जन्म–मरण का मूल है। राग–द्वेषात्मक परिणाम अर्थात् कषाय भाव कर्म है। कार्मण जाति का पुद्गल, जो कषाय के कारण आत्मा के साथ मिल जाता है, वह द्रव्य कर्म है। इस द्रव्य और भाव कर्म की कार्यकारण परम्परा अनादि काल से चली आ रही है।

जैन धर्म में कर्म की विभिन्न अवस्थाएं हैं। बन्ध, सत्ता, उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण, उदय, उदीरणा, उपशमन, निधत्ति, निकाचित और आबाधाकाल। आत्मा के साथ कर्म परमाणुओं का सम्बन्ध होना, क्षीर नीरवत् एकमेक हो जाना बंध है। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से बन्ध के चार प्रकार हैं। आबद्ध कर्म अपना फल प्रदान कर जब तक आत्मा से पृथक् नहीं हो जाते तब तक वे आत्मा से ही सम्बद्ध रहते हैं। इसे सत्ता कहा जाता है। स्थिति बन्ध और अनुभागबन्ध के बढ़ने को उद्वर्तना कहते हैं। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध के घटने को अपवर्तना कहते हैं।

उद्वर्तना और अपवर्तना के कारण कोई कर्म शीघ्र फल देता है और कोई देर में, किसी का फल तीव्र होता है और किसी का मन्द। एक प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि का दूसरे प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि के रूप में परिवर्तित हो जाने की प्रक्रिया को संक्रमण कहते हैं। कर्म का फलदान उदय है। यदि कर्म फल देकर निर्जीर्ण हों तो वह फलोदय है और फल दिये बिना ही उदय में आकर नष्ट हो जाय तो प्रदेशोदय है। नियत समय के पूर्व कर्म का उदय में आना उदीरणा है। जैसे समय से पूर्व ही फल पकाये जाते हैं, वैसे ही साधना से आबद्ध कर्म का नियत समय से पूर्व भोगकर क्षय किया जा सकता है। सामान्यतः यह नियम है कि जिस कर्म का उदय होता है, उसी के सजातीय कर्म की उदीरणा होती है।

कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी उदय में आने के लिए उन्हें अक्षम बना देना उपशम है। जिसमें कर्मों का उदय और संक्रमण न हो सके, किन्तु उद्वर्तन–अपवर्तन की संभावना हो वह निधत्ति है। जिसमें उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण एवं उदीरणा इन चारों अवस्थाओं का अभाव हो, वह निकाचित है। आत्मा में जिस रूप से कर्म बंधा है उसी रूप में भोगे बिना उसकी निर्जरा नहीं होती। कर्म बधंने के पश्चात् जब तक फल न दे ऐसी अवस्था को आबाधाकाल कहते हैं। संसार में दिखाई पड़ने वाली विभिन्नता का कारण कर्म ही है। चौरासी लाख जिव योनियों में सभी प्राणी अपने कर्म के अनुसार पृथक–पृथक योनियां प्राप्त करते हैं। आत्मा सभी प्राणियों में समान है। विभिन्नता का कारण कर्म ही है। कर्मों की अधीनता के कारण अव्यक्त दुःख से दुखी प्राणी जन्म जरा और मरण से भयभीत होकर संसार–चक्र में भटकते रहते हैं। प्राणियों के शुभाशुभकर्म ही संसार भ्रमण के कारण हैं। कर्मास्रव के क्षीण होने पर आत्मा मुक्त हो जाता है। कर्म की बड़ी विचित्र गति है।